आराध्यशोकाञ्जलिः

"अनिशं खलु तत्र धाम ते रमते यत्र परात्मपूरुषः"

श्रीधर शर्मणः

"मित्र बंधु विद्वान साधु समुदाय एक सपना पाया
अपने मात पिता बिन जग में नहीं कोई अपना पाया
प्रिय वियोग दुख देख नित्य नित अभिनव मन उत्ताप हुआ।
भ्रांतिजन्य सर्वत्र कुतूहल शान्त आप से आप हुआ"

"दो घंटे तक मुझे नित्य वह श्रम से आप पढ़ाता था
विद्या विषयक विविध चातुरी नित्य नई सिखलाता था
करूं कहां तक वर्णन उसकी अतुल दया का भाव
हुआ न होगा किसी पिता का ऐसा मृदुल स्वभाव"

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

गोलोकवासी श्रीमत्पंडित लीलाधर जी महाराज।

श्रीगोपेशो विजयते

आराध्यशोकाञ्जलिः

अयि निर्दय दैव किं कृतं धिगिदं तेऽन्तक दुर्विचेष्टितम्
प्रसभं कुलिशाऽभिपातनं हृदयेऽस्माक मनागसात्मनाम् ![1]

भगवत्पदसेविनां कुलं सुतरा मस्ति कृपार्ह मेव ते
किमुताऽकरुणत्व मीदृशं विहितं तर्हि विगर्हितं विधे ?[2]

क्व गताऽस्ति किलाऽस्य चेतना क्व च सा वाक्पटुता क्व भा क्व धीः
क्व नु चाननचारुता गता भुवि शेतेऽद्य विनिष्क्रियं वपुः ?[3]

१—अरे निर्दयी दैव! तूंने क्या किया। अरे अन्तक! धिक्कार है तेरे इस क्रूर कर्म को। हाय! इस बलिष्टता से हम निरपराधियों के हृदय पर तूंने वज्र गिराया!

२—भगवान् के चरणों की सेवा करनेवालों का (यह) कुल, अवश्य तेरी बड़ी कृपा के योग्य है। तब तूंने, हे विधिना, ऐसा निन्दनीय निर्दयीपन क्यों किया?

३—हाय! इनकी चेतनाशक्ति कहां गयी, और कहां वह वाकचातुरी, वह कान्ति और बुद्धिवैभव गया? कहां मुख की सुन्दरता सिधारी? हाय क्रिया-शक्ति से शून्य होकर यह शरीर भूमि पर सो रहा है!

ननु दीनजनं स्वरक्षितुर्निधनेनेत्थमनाथतांगतम्
सहसा रुषया कृतेन ते बत संवीक्ष्य न चाऽनुकम्पसे ! [४]

अथ वा भवितव्यतास्थले नहि धातस्त्वमपि व्यशृंखलः
"मरणं प्रकृतिः शरीरिणा" मितिसूत्रप्रणिबद्धचेष्टितः ! [५]

विबुधैर्भुवि सर्वदेहिनां स्थिति रेषैव सनातनी स्मृता
अत एव हि नो प्रतिक्रिया प्रकृतिक्षुण्णपथानुगस्य ते ! [६]

क्व गतोऽसि समाप्य जीवनं खलु संत्यज्य धनं जनं गृहम्
अवलोक्य हि नो न दूयसे भवदालम्बनिवृत्तिविह्वलान् । [७]

४—अरे विधिना, तैंने सहसा क्रोध से मेरे रक्षा करनेवाले को हर मुझे अनाथ कर दिया ! क्या तू मुझ दीन को इस प्रकार अनाथ हुआ देख तरस नहीं खाता ?

५—अथवा होनहार के विषय में तू भी स्वतंत्र नहीं है। "मरना देहधारियों की प्रकृति ही है" इस सूत्र से तेरी कार्यशक्ति बंधी हुई है ।

६—विद्वानों ने भी कहा है कि पृथ्वी पर सब देहधारियों की स्थिति सनातन से ऐसी ही चली आई है। इससे, प्रकृति के खूंदे हुए पथ पर चलने वाले हे विधाता, तेरी कोई प्रतिक्रिया नहीं।

७—हे पिता ! तुम अपना जीवन समाप्त कर, धन, जन और घर सब से सम्बन्ध तोड़, कहां गये ? आज आपसे हमारा सहारा टूट जाने से हमें दुखी देख क्या आप दुखी नहीं होते ?

विधिना द्विपता सुजीविना मनभिज्ञाशि मिमां प्रयापितः
न शृणोपि न भापसेऽधुना, न यथापूर्वमना मनागसि [८]

त्वयि जीवति हन्त ! हे पितर्बहुधाऽह न्तव सेवनेऽस्खलम्.
इतिदुःखविषरणमानसस्त्वधुना ते करवाणि चाटु किम् ! [९]

न हि विश्वहितैषिणा त्वया द्विपता मप्यहितं समीहितम्
समुदारतया हि युज्यते स्वपरेषु प्रकृति र्भवादृशाम् [१०]

रति रच्युतपादपंकजे, गति रेका श्रुतिदर्शिते पथि
मति राप्तमताश्रयात्मिका, धृति रासीत्तव नैष्ठिकी पितः ! [११]

८—उत्तम जीवनवालों के वैरी विधाता ने तुम्हें इस अज्ञान दशा में पहुंचा दिया है। हाय ! तुम अब न सुनते हो, न बोलते हो, न पहले की भांति सोचते हो !

९—आपके जीते जी, हे पिता ! मैंने आपकी सेवा में बहुत त्रुटि की। इस बात से मेरा मन बहुत दुखी है, अब आपको प्रसन्न करने के लिये मैं क्या करूं ?

१०—विश्व की भलाई चाहनेवाले आप ने वैरियों की भी बुराई कभी नहीं चीती। आहा ! आप सरीखों की प्रकृति अपने पराये, मित्र शत्रु, सब की ओर उदारता ही के साथ युक्त होती है।

११—रति* आप की भगवान् के चरणों में थी; गति वेदों के दिखाये मार्ग में थी; मति आप्त जनों के सिद्धान्तों में, और धृति आप की, हे पिता ! धर्मनिष्ठा में थी।

*रति=प्रीति, भक्ति, अनुरक्ति।

वपुषि व्यथितेऽपि सर्वथा व्यरमस्त्वं न हि नित्यकर्मतः
तदुपेक्षणातः प्रलुप्यते तदुपेया द्विजतेतिनिश्चयः [१२]

भगवज्जन ! कृष्णरूपतामति रासीत्तव विप्रजातिषु
द्विजवर्य ! न कोऽपि दृश्यते सदृश स्ते द्विजनिष्ठताविधौ [१३]

स्मरणीय मुपास्य नाम ते करणीयन्तु गुणानुवादनम्
स्पृहणीयतया प्रकाशते धरणीयं तपसा तवोज्ज्वला [१४]

अनिशं खलु तत्र धाम ते रमते यत्र परात्मपूरुषः
यदवाप्तु मनेकजन्मसु प्रयतन्ते प्रयतात्मयोगिनः [१५]

१२—शरीर सर्वथा व्यथित होने पर भी आप अपने नित्य कर्म से कभी नहीं रुके। आप का निश्चय था कि ब्राह्मणत्व कर्मसाध्य है और कर्म की उपेक्षा से वह लुप्त हो जाता है।

१३—हे भगवज्जन ! ब्राह्मण मात्र को आप कृष्ण का रूप मानते थे। हे ब्राह्मणों में वरेण्य ! आप की सी ब्रह्मनिष्ठावाला दूसरा कोई नहीं दीखता।

१४—हे उपास्य ! आप का नाम स्मरण करने योग्य है; आप के गुण गान करने योग्य हैं। यह धरणी आप के तप से स्पृहणीय रूप से प्रकाशमान है।

१५—आप का निरन्तर वहां धाम है जहां सब से परेवाला आत्मपुरुष रमण करता है। जिस धाम के प्राप्त करने को प्रयतात्मा योगी जन अनेक जन्मों तक प्रयत्न करते हैं।

स्मरत स्तव पुण्यजीवनं व्यवसन्नं बहुदिष्टविप्लवात्
हृदयं मम नाऽनुरज्यते व्यवसाये ऽव्यवसानशालिसु[१६]

त्वयि तन्निलयं समागते स्वयमभ्युत्थितवान् समादरात्
स्वजनेक्षणहर्षकुण्ठितो बत वैकुण्ठपति र्जनार्दनः[१७]

पुरतः समवेक्ष्य तं विभुं नवनीलाभ्रनिभं मनोहरम्
तवभावितपीतवाससं धृतवेणुं व्रजगोपिकावृतम्[१८]

१६—आप के पुण्य जीवन की समाप्ति, बलिष्ठ होनहार के फेर से हुई स्मरणकर, मेरा मन समाप्त होनेवाले (क्षणभंगुर, अस्थिर, सांसारिक) व्यवसायों में अब नहीं लगता।

१७—अहा! आप जब विष्णु भगवान् के घर पहुंचे तो भगवान् स्वयं आदर सहित आप को लेने के लिये उद्यत हुए। वह वैकुण्ठनाथ जनार्दन निजजन को देख हर्ष से ऐसे कुण्ठित हो गये।

१८—उनको आपने अपने आगे अपनी जीवितावस्था की भावना के अनुसार देखा, अर्थात्—

नवलनीलनीरदवपु स्याम। रूपरासि बलि कोटिन काम
सुघर पीतपट की फहरान। प्रेमधुजा मनु रोपी आन
मधुर मुरलिछवि अधर सुहाय। पुलकि प्रेमि मन बलि बलि जाय
घेरि रहीं सहसन व्रजवाल। मदन मोहन लखि रूप निहाल

कमलायतलोललोचनं वनमालं कुटिलभ्रुकुन्तलम्
तुलसीलसदंघ्रियुग्मकं हरिगन्धार्चितचारुविग्रहम् [१९]

मकराकृतकुण्डलप्रभोज्ज्वलदुल्लासितगण्डमण्डलम्
शिखिबर्हकिरीटशोभिनं नटनोद्योजितकिङ्किणीधरम् [२०]

सरमं परमं तमच्युतं बहिरन्तर्विहरन्त मव्ययम्
सततं किल भक्तवत्सलं सदयं शान्त मनन्त मीश्वरम् [२१]

१९-२१—कमल नैन बांकी वर भौंह। तन त्रिभंग चितवन तिरछौंह
उर रही ललकि विमल बनमाल। चरन जुगल तुलसोस्रग जाल
मकराकृत कुण्डल भल श्रौन। जगमगात उज्जल छवि भौन
परि कपोल तिहि झलमल जोति। श्री मुख छटा दुगुन दुति होति
हरिचंदनचर्चित सुठि अंग। सुरभित पटा सुहाय सुरंग
मोरमुकुटसोभा सविसेस। नृत्यहेतु कृत नटवरवेस
कल किंकिनि कटि ललित ललाम। रतनजटित अतिसय अभिराम
वामभाग छीरोदकुमारि। विधिहर जुगल दरस वलिहारि

ऐसे भक्त वत्सल भगवान्, सर्वान्तर्यामी, सकलजगस्वामी, घट २ निवासी, अलख अविनासी, अनन्तसत्व अव्यय, अच्युत दयामय, शान्तिपारावार, त्रिभुवनैक आधार, परात्पर परमेश्वर—

करुणाऽतिशयात्त्वोन्मुखं त्वरया त्वं प्रणिपाततत्पर:
अभव: प्रणयाश्रुपूरदृग्जयगोपाल ! जयेति गद्गद: [२२]

२२—आप की ओर करुणाभरी चितवन से निहारने लगे। प्रभु का इस प्रकार दर्शन पा, आप के हृदय में एक संग प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा और आंखों में आंसुओं की धारासहित, गद्गद स्वर से पूर्व-अभ्यास-अनुसार "श्रीगोपाललाल की जय" यों कहते हुए आप तुरन्त "अवनीलग्न" साष्टाङ्ग प्रणाम कर भगवान् की स्तुति करने लगे—

जय जय आनँद जय घन स्याम। जय नितनवलरूपछबिधाम
जय अव्यक्त अगुन गुनग्राम। जयतु भक्तजनपूरनकाम
जय सुखसदन कदनदुखद्वंद। मदनमोहन जय जय ब्रजचंद
जय "कस्तूरीतिलकललाट"। जय जय तीन लोक सम्राट
अखिल भुवन सुखमासुखखान। जय ब्रजेश गोपीजनप्रान
जय कौस्तुभधरवक्षविशाल। गल रसाल वैजन्ती माल
वारौं कोटि कोटि रति काम। जुगलरूप राधावर स्याम
जय अच्युत प्रभु शान्तिसरूप। सत चित घन आनंद अनूप
जय जय सततप्रनतप्रतिपाल। जय गुपाल जय जसुमतिलाल
ब्रजवल्लभ "ब्रजजनकुलपाल"। लीलाधर जन कियौ निहाल
निजजन जानि दया विस्तारि। भक्तवछल मोहि लियौ उबारि

अथ तत्र रमस्व शाश्वतं समतिक्रान्तनिसर्गसंगमः
सुचिरा त्तपसा समर्जिता मजसारूप्यजनिर्वृतिं भजन् [२३]

मधुरस्मितरोचिताननद्युतिसंभावितपुण्यदर्शनः
त्रिदशै रभिनन्दनोत्सुकै र्नवमन्दारसुमैः समर्चितः [२४]

बहवो निवसन्ति सन्ततं सुखवन्त स्तव तत्र पूर्वगाः
गुरवः पितरः सुहृद्वराः प्रियशिष्याः पटवश्च पंडिताः [२५]

भगवत्सविधे समाहिताः सुतरां भागवतेषु वत्सलाः
सह तैः सफलाऽनुभूयतां निरतिर्वर्गचतुष्फला हरेः [२६]

२३—२४—अब वहां पर आप, मधुर मुसिक्यान वाले मुख के उजास से उजासित पुण्य दर्शन, दिव्य देहधारी हो, अभिवन्दना करने के चाव से भरे देवताओं द्वारा मन्दार के नवीन पुष्पों से पूजित, प्रकृतिसम्पर्क से परे, चिर तपस्या से कमाये हुए सारूप्य सुख को भोगते हुए, सर्वदा के लिये रमण कीजिये।

२५—वहां आप से पहले गये हुए आप के गुरुजन, पितृगण, मित्रवर, प्रियशिष्य और परिचित चतुर पण्डित, बहुत से सुखशाली, निरन्तर निवास करते हैं।

२६—वह भगवान् के समीप ही बने रहते हैं और भगवज्जनों से बहुत वात्सल्य भाव रखते हैं। उनके साथ आप चतुर्वर्गफलदायिनी भगवान् की भक्ति का सफल अनुभव कीजिये।

अपठः खलु लक्षतोऽधिकं कल "गोपालसहस्रनाम" यत्
सुलभं त्विदमेव तत्फलं प्रभुगोपालकृपालवोदितम् [२७]

सुजनिं सुजनोचितक्रियं द्विजसारस्वतषट्कुलध्वजम्
सुकृतोत्सुक "कुत्स" गोत्रजं भवविस्तारितकुत्सितेतरम् [२८]

कुशलं कुशलेशसूरिणः कुलजं लक्ष्मणमिश्रनन्दनम्
मृदुशीलनिसर्गसुन्दरं बुधलीलाधरपावनाऽभिधम् [२९]

सततं हरिचिन्तने रतं हरिभक्तं हरिभक्तसंस्तुतम्
हरिभक्त्युपदेशतत्परं हरिपादाम्बुजसेविषट्पदम् [३०]

विबुधं विबुधाऽभिवन्दितं विविधैस्सौम्यगुणैः समन्वितम्
सुविधव्यवहारकोविदं प्रयताचारपरं नरर्षभम् [३१]

अभिधानपदं तपस्विना मनुसन्धानपदं मनस्विनाम्
अभिमानपदं द्विजन्मना मनिशं त्वामनुचिन्तयाम्यहम् [३२]

२७—आप ने जो एक लाख से अधिक, भक्तिसहित, "श्री गोपाल सहस्र नाम" के पाठ किये थे, उसी का यह सुलभ फल आप को प्रभुवर श्री गोपाल लाल के कृपालव से मिला है।

२८-३२-यह पिता जी का स्तोत्र है, अतः इसका भाषा भाव नहीं दिया गया।

२८ "कुत्स" ऋषि ऋग्वेद की कतिपय ऋचाओं के रचयिता थे। उनका एक नाम "आर्जुनेय" भी है।

चैत्रकृष्णा ९, १९६१।२

संक्षिप्त जीवन परिचय

पूज्यपाद पिता जी का जन्म आगरे से १२ कोस पूर्व, हमारे प्राचीन निवासस्थान जोंधरी ग्राम में, संवत् १८८७ फाल्गुन शुक्ला ५ गुरुवार को हुआ था। उनके पिता श्रीमान् पं० लक्ष्मण मिश्र वड़े सन्तोषी और सात्विक ब्राह्मण थे। विद्या पिता पुत्र दोनों को सामान्य हो थी, परन्तु सव विद्याओं की विद्या—ईश्वरे निश्चला भक्तिः—दोनों के हृदयाल में अनवद्यरूप से उदित थी। पिता जी के पितामह, श्रीकृष्ण मिश्र, भक्तिमय जीवन के आदर्श थे; उन्हीं से इन्हें प्रकृतिपरंपरया भगवन्निष्ठा प्राप्त हुई। प्रपितामह, श्रीकुशल मिश्र, भाषा के परम प्रतिभाशाली कवि थे। वह भी कृष्णभक्त थे। "वाल कृष्ण चंद्रिका", "गंगानाटक" आदि उनकी कतिपय रुचिर रचना हैं। कविता में वह अपने को "कुशल" अथवा "कुशलेश" लिखते थे।

श्रीकृष्ण वावा जू के छोटे भाई श्रीराधा कृष्ण जी संस्कृत के वहुत अच्छे पंडित और एक प्रांशुकाय पराक्रमी योद्धा थे। पांचों हथियार वांधते थे। उनके पुत्र श्रीयुत नारायण मिश्र पिता जी के गुरु थे।

पिता जी के सगे भ्राता, शास्त्री धरणीधर जी, न्याय और धर्म शास्त्र के धुरंधर विद्वान् थे। १४ वर्ष नदिया शांतिपुर में निवास कर वड़े परिश्रम से उन्होंने विद्योपार्जन किया था। परन्तु वंगाले के चिरप्रवास से वह श्वास रोग से ग्रसित हो गये, अतः अपनी अगाध विद्या का ऐहिक फल विपुल रीति से न उठा सके। वह मंत्र शास्त्र में भी पारंगत थे। वर्त्तमान जयपुरनरेश की पटरानी उनकी शिष्य हैं। उनका स्वर्गारोहण गंगातट कर्णवास तीर्थ पर संवत् १९५९ में हुआ। न्याय के प्रसिद्ध ग्रंथ "आत्मतत्व विवेक" पर आप एक संस्कृत व्याख्या लिख गये हैं।

आर्थिक अवस्था इस कुल की कुशल मिश्र से भी पहले से संकुचित चली आयी है। उससे पहले यह घराना, कहते हैं, धनाढ्य और धराढ्य था। किन्तु धर्माढ्य यह सदैव काल रहा है। संवत् १८७० के वैशाख में इस कुल के मुख को समुज्ज्वलकारिणी श्रीमती लांगा देवी अपने पति श्री नरोत्तम जी पाठक के शव को अंकारोपित कर ग्राम प्रान्त के नैऋत कोण में सतीत्व-शय्यारूढ़ हुई थीं। उनका स्मारक एक पाषाण मठ, शिलालेख सहित, उक्त पतिव्रता-पूत स्थान पर अद्यापि विद्यमान है। उसमें एक शिवलिंग स्थापित है। वहां पर संध्या समय, संध्यावंदनशील क्रियावानों का मन एक अनिर्वचनीय आनंद अनुभव करता है।

पिता जी इस कुल की धर्म और भक्तिमत्ता विषय में अन्तिम शोभा थे। उनका समस्त जीवन गोपालाराधन में ही व्यतीत हुआ। यद्यपि वह अपने समग्र कुटुम्ब और बन्धुवर्ग के एकान्त स्नेही थे और सब सांसारिक कार्य्यों में पूर्णरीति से प्रवृत्त होते थे, तथापि मन उनका उनमें संलग्न नहीं था, वह सदैव भगवत्पादारविन्द-परागानुरागी भृंग ही रहा। उनका भजन भोजन, क्रिया कर्म, उठन बैठन, रहन सहन, यावद्व्यवहार केवल यशोदानंदन कंसनिकंदन, प्रणतपाल, गोपालाल के लिये था। उनके जीवन का सूत्र था—

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्
यत्तपस्यसि कौन्तेय। तत्कुरुष्व मदर्पणम्"

वह पूरे गृहस्थ थे और गृहस्थ-धर्म्म-पालन में अनुकरणीय थे। अर्थ-संकोच रहने पर भी यावत्कार्य गृहस्थी के अपने कुल के अनुरूप किये। कोई अतिथि

अभ्यागत वा याचक द्वार से कभी विमुख नहीं गया। असमय भी आता तो सत्कार पाता। यदि उनके भोजन के समय कोई भिक्षुक आ जाता तो जब तक उसको भिक्षा न दे दी जाती तब तक आप अपना भोजन बन्द कर देते।

स्नेह का समुद्र थे। शील स्वभाव, बोलचाल सब में सरलता-संयुक्त महानुभावता का भाव था। जिसका उनसे एक बार साक्षात्कार होगया वह उनका बार बार दर्शनाभिलाषी और यावज्जीवन प्रेमी रहा। शत्रु उनका कोई न था। यदि कभी कोई दुर्जन अपनी दुष्प्रकृतिवश उनसे द्वेष करने पर प्रवृत्त भी हुआ तो शीघ्र ही उसे उनका मित्र और अनुचर बनना पड़ा। अपने पिता को ईश्वर और ज्येष्ठ भ्राता (शास्त्री जी) को पिता के समान मानते थे। गुरुचरण में अगाध भक्ति थी।

अपने ऊपर अनेक कष्ट झेल कर पिता जी ने मुझ को चार अक्षर संपादन कराये। उनके असीम-स्नेह-संभावित अगणित गुणों का स्मरण हृदय को गद्गद और अन्तरात्मा को द्रवित करता है। यदि माता पिता की कृपाएं पुत्र पर ऋण समझी जायँ तो क्या कोई पुत्र उनसे पूरा उऋण हो सक्ता है?

पिता जी को अर्श का राज-रोग था, जिससे वह आयु भर पीड़ित रहे और अनेक बार अत्यन्त अशक्त दशा में प्राप्त हो गये। तथापि उन्होंने भगवत्सेवा और नित्यकर्म एक दिन को भी न छोड़ा। इसके अतिरिक्त उन्हें और कोई असौख्य न था। गत ग्रीष्म के आरंभ में इस रोग ने असह्यवेग ग्रहण किया, साथ ही वात-पीड़ा उठी। आगरे के एक प्रसिद्ध यूनानी हकीम के अनुरोध से अर्श निवृत्ति की आशा में वह कोई तीन साल से अफीम का सेवन करने लगे थे। उसने पहले कोई दिनों तक कुछ लाभ दिखाया, परन्तु पीछे वह दुःखदायिनी हो गयी। उससे इस समय चिकित्सा में बहुत अवरोध पड़ा; औषध का आयोजन नितांत निष्फल

हुआ। और कई मास के क्लेश के अनन्तर गत माघ शुक्ला द्वितीया को संध्या के ८ ॥ बजे, सचेत दशा में, अपने सब कुटुम्ब के बीच, सभों को संसार की अनित्यता का अनुभव कराते हुए, श्री पितृचरण परमधामगामी हुए।

पिता जी आस्तिकता और ब्रह्मण्यता का रूप थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है उनका मन निरन्तर कृष्णानुराग में लीन रहता था। उन्हीं का ध्यान, उन्हीं का नाम, उन्हीं से सदा काम था। रात्रिंदिवा "गोपाल सहस्र नाम" का पाठ किया करते थे। कई वार आठ २ पहर में १०८ पाठ किये। इस निष्ठा ने उन्हें अनेक चमत्कार दरसाये, जिनके उल्लेख के लिये यह स्थान अनुपयुक्त है। वह स्वयं गोपालमय थे और जगत् मात्र को गोपालमय समझते थे। उनकी अन्तिम रुग्ण अवस्था में जो कुटुम्बी और भृत्यगण उनकी शुश्रूषा करते थे, आप कहते थे कि गोपाल जी ही भिन्न २ शरीर धर मेरी सहायता कर रहे हैं। सब कुटुम्बियों को, सब मित्रों को, सब परिचितों को सदा गोपाल-भक्ति का अनुरोध करते थे। भगवान् के गुण बखानते २ प्रायः प्रेमाश्रुपूरितदृग्, गद्गद स्वर हो रो पड़ते थे।

अपने बैठने के स्थान में गोपाल जी और श्री नाथ जी के चित्र सजाये रखते थे और घंटों उनकी ओर देखते २ भूले से हो जाते थे। सुना है कि प्रेम-बाहुल्य में कभी २ उनके आगे नाचने लगते थे। प्रत्येक उत्सव यथाशक्ति धूम धाम से मनाते थे। जन्माष्टमी, अन्नकूट, शरत्पूर्णिमा, वसन्त और होली पर महोत्सव करते थे। विना ठाकुर जी का प्रसाद कराये कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते थे।

कृष्ण विषयक जो श्लोक वह नित्य पढ़ा करते थे उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्
रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै वृन्दारण्यं सपदि रमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्
नासाग्रे गजमौक्तिकं करतले वेणुः करे कंकणम्
सर्वांगे हरिचंदनं सुललितं कंठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः

सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलम्
करधृतनरशैलं वेणुनादे रसालम्
व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलम्
चरणतुलसिमालं नौमि गोपालबालम्

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय

अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवर्ती
नवगोपवधूटिविलासशाली वनमाली वितनोतु मंगलानि

ईषदीषदनधीतविद्यया तातमातृमुदमाविवर्धयन्
क्षेपणाय भवजन्मकर्मणाम् कोपि गोपतनयो नमस्यते

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरान्त रद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते

हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते
हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्षवन्
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तुते

भगवद्भक्ति की महिमा के बड़े २ दृष्टान्त दिया करते थे। नंददास की इन दो पंक्तियों को इस सम्बन्ध में बहुधा सुनाया करते थे—

भृंगिसंग सों भृंग होत जब कीट महाजड़
कृष्ण नाम सों कृष्ण होय तो कहा अचरज बड़

श्रीमद्भागवत उनका सर्वमान्य ग्रन्थ था; उसे अपना जीवन-सर्वस्व मानते थे और मनन करते रहते थे।

घर की स्त्रियों को कृष्णभक्ति के अतिरिक्त अनेक गार्हस्थ्य-नीति-मय उपदेश दिया करते थे। पतिव्रता धर्म के निम्न लिखित श्लोक भागवत दशमस्कन्ध में से सुनाया करते थे—

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मोह्यमायया
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानांचानुपोषणम्
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोपि वा
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी

मेरी पत्नी के पास उनके हाथ की लिखी हुई तुलसीकृत रामायण की ये चौपाई रक्खी हुई मिली हैं—

कह रिषि वधू सरल मृदुवानी। नारिधर्म कछु व्याज बखानी
मातु पिता भ्राता हितकारी। मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी
अमितदानि भर्त्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिये चारी
वृद्ध रोगवस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अतिदीना
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना

भगवत्सेवानिरत होने पर भी वह महान् परिश्रमी और व्यवसायी थे। पिछले दिनों तक इतनी व्यथित अवस्था में भी अपने ज्येष्ठ पौत्र को जो कि अभी सात बरस का वालक है अमरकोश परिश्रम पूर्वक पढ़ाते रहे। अति स्वल्पनिद्र थे; मैं जब दस बरस का था रात के तीन बजे उठाकर मुझसे कौमुदी का पाठ कराते थे और आप भागवत देखते थे।

शास्त्र के अक्षर २ को सत्य समझते थे। ज्योतिष, धर्मशास्त्र, कर्मकांड के अत्यन्त अनुयायी रहे। कोई कार्य बिना पंडितों की अनुमति के नहीं किया। जब किसी कार्य का करना इस प्रकार स्थिर कर लेते तो उसे अनेक विघ्न होने पर भी अवश्य कर ही डालते। वह सचमुच भर्तृहरि के इस वाक्य का कि "न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" ज्वलन्त उदाहरण थे।

बड़े दानशील थे। दुर्भिक्ष में बुभुक्षितों को यथाशक्ति अन्न देते रहे। ब्राह्मणों में अत्यन्त श्रद्धा थी; उन्हें भगवद्रूप समझते थे। कहते थे-स्वयं भगवान् का वाक्य

है कि "अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः" और इसी के अनुसार भावना रखते थे। हमारे यहां एक ब्राह्मण चौकीदार नौकर है ; वह कुछ पढ़ा लिखा है और नित्य गंगा स्नान कर अपनी कोठड़ी में शंखध्वनि पूर्वक शालग्राम पूजन करता है। उसपर बहुत प्रसन्न थे और उसे प्रायः दान दिया करते थे। गत मकर अर्थात् मृत्यु से दस बारह दिन पहले की बात है कि आप उसे खिचड़ी दे रहे थे। मैं ने देखा कि उसे अपने सामने एक आसन पर बैठा लिया है और विधान पूर्वक दान के अनन्तर उससे कह रहे हैं "लाओ चरण छूइ लैन देउ"। पारसाल एक दूसरा ब्राह्मण, निरा निरक्षर और उजड्ड, नौकर था ; उसे भी पिता जी ने अनेक बार इसी प्रकार पूजन कर दान दिया था। जन्म भर ब्राह्मणों का सत्कार और उपकार करते रहे। ब्राह्मण विना उन्हें एक क्षण भी न बनती थी। किसी कार्य का आरम्भ विना ब्राह्मण की आज्ञा लिये नहीं करते थे। प्रत्येक ब्राह्मण से अति अधीनता से भाषण करते थे ; प्रत्येक ब्राह्मण से मेरे कल्याण और आयुर्वृद्धि का आशीर्वाद मांगते थे।' अपने पास आये हुए ब्राह्मण को शून्य पृथ्वी पर कदापि नहीं बैठने देते थे। आसन बिछवा कर उस पर बैठने का आग्रह करते थे, क्योंकि—

"ब्राह्मणस्य गुदा शंखं रुद्राचं चंडिपुस्तकम्
धरणीस्पर्शमात्रेण इन्द्रस्यापि श्रियं हरेत्"

इस वाक्य की प्रमाणता में आप को अणु मात्र भी सन्देह न था। पारसाल वैशाख में प्रयाग में विधिपूर्वक अपना सर्व-प्रायश्चित्त करवाया था ; उस समय भी आप की अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठा देखने में आई थी।

यवनसंसर्ग से बहुत बचते थे। स्पर्श हो जाने पर विना स्नान किये नहीं रहते थे।

अपनी सन्तान पर अपरिमित प्रेम था। मैं उनका एक ही अवशिष्ट पुत्र हूं; मुझे गोपाल जी का प्रसाद समझते थे, यद्यपि मेरे अंग्रेज़ी-संसर्ग-दूषित स्वतन्त्र सिद्धान्तों पर प्रायः खेद करते थे। अन्तर में मुझ पर प्रसन्न थे, पर मेरे सामने मेरी बड़ाई कभी नहीं करते थे; ऐसा करना हानिकारक मानते थे। मुझ पर उनका अथाह वात्सल्य था। मेरी भक्ति विषयक कविता की प्रशंसा करते थे, परन्तु शेष को व्यर्थ की बकवाद बताते थे। उनकी आज्ञा थी कि सब कविता केवल भगवत्-संबंध में होनी चाहिये, परन्तु इस आज्ञा का पालन मुझसे न हो सका। इसका मुझे बहुत अनुताप है।

उनकी यह उत्कट अभिलाषा थी कि उनका शरीर त्याग प्रयागराज में अथवा अन्यत्र श्री गंगातट पर हो। "श्री गोपाल लाल जी की कृपा से" यह कामना उनकी पूरी हुई। उनका परमार्थरत पुण्यजीवन स्वार्थ परायण संसार को उपदेश रूप था, जिसकी अनेक बातें उल्लेख योग्य हैं, परन्तु इस छोटी पोथी में वह सब नहीं आ सकीं; संभव है किसी और अवसर पर प्रकाशित हों।

मातृचरण परमेश्वर की कृपा से अभी विद्यमान हैं; उनकी छाया में मैं अभी अपने जीवन को निर्भय समझता हूं।

श्री प्रयाग,
चैत्र शुक्ला ११ गुरौ
संवत् १९६२

श्रीधर पाठक।

पिता जी के रचे हुए कुछ पद

सखी मेरौ सुन्दर है गोपाल

छोटे चरण छोटी वनमाला, बड़े बड़े नैन विशाल

नाचै कूदै वंसी बजावै गावै गीत रसाल

स्याम सुन्दर छवि देखि जसोदा लोचन करति निहाल

जेही छवि लीलाधर के उर वास करौ नँदलाल

अबकी वेर मोहि तारौ

बाल तरुण बीती सब घर में लोभ मोह मन धारौ

वृद्ध अवस्था आइ गई अब बुधि बल कौन किनारौ

जप तप व्रत तीरथ उद्यापन इन बिच मन नहिँ धारौ

जगत जाल में फस्यौ मोह वस वृथा जन्म सब हारौ

गोप गीध गनिका प्रभु तारी कुबिजा रूप सुधारौ

भक्त अनन्तु के सुख दैवे कूँ गोप रूप तुम धारौ

लीलाधर की बुधि वानी कूं चरन कमल गुन गारौ

अधम उधारन नाम तुम्हारौ जेही भरोसौ भारौ

करुणा क्यों नहिं आवै

जो जन ध्यान धरत नित तुम्हरौ मन वांछित फल पावै
पीछे तें वैकुण्ठ जात है फेरि यहां नहिं आवै
मन चंचल मेरौ मानत नाहीं लोभ मोह विच धावै
अब जाहि चरण कमल विच राखो गर्भवास मिटि जावै
राज रोग एक ववासीर करि देह महादुख पावै
तुम विन वैद्य न दीसे सांवरे क्लेश समूह भजावै
लीलाधर प्रभुकूं करजोरे वार वार सिर नावै
सुन्दर स्याम माधुरी मूरति हृदै वीच वसि जावै

गोपाल संग होरी खेलन मैं आयौ

ज्ञान विवेक सखा सँग लेकै कृष्ण नाम गुन गायौ
लोभ मोह की वांधि पोटरी तृष्णा धूरि उड़ायौ
जन्म दारिद्र भजायौ
जनम मरण योनी संकट मैं वार वार भरमायौ
अवकी वेर स्याम रंग भीजौ आवागमन मिटायौ
ढोल आनन्द वजायौ
जाकौ ध्यान धरत ब्रह्मादिक वेद पार नहिं पायौ
सोई प्रभु भक्तन के कारन गोपरूप धरि आयौ
गोकुल घर घर सुख छायौ
अधम उधारन सुनि लीलाधर चरन सरन तकि धायौ
सुन्दर स्याम माधुरी मूरति उर आनँद न समायौ
खेल अच्छो वनि आयौ